कतरनें

काव्य संग्रह

तनवीर मतीन खान

अन्तरा-शब्दशक्ति
प्रकाशन

कतरनें

काव्य संग्रह

तनवीर खान

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन
वारासिवनी, मध्यप्रदेश

ISBN - " 978-93-5372-074-2"

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

संपादक- प्रीति समकित सुराना

तकनीकी संपादक - संदीप कुमार सोनी

मुख्य कार्यालय - १५ नेहरू चौक, वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र.) ४८१३३१

दूरभाष- (कार्या.) ०७६३३-२५३१५६

मोबाईल- ६४२४७६५२५६

अणुडाक - antrashabdshakti@gmail.com

अंतरताना - www.antrashabdshakti.com

प्रथम संस्करण - २०१६, **तनवीर खान**

आवरण चित्र - **संदीप सोनी, वारासिवनी**

मूल्य - ६०.०० रूपये

मूद्रक- **शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी**

KATRANE BY TANVEER KHAN

वैधानिक चेतावनीः- इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम में अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरूत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है। अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

आत्मकथ्य

सांस्कृतिक एवं धार्मिक नगरी वाराणसी जो कि अपनी अल्हड़ मिजाजी और सादगी के लिए मशहूर है, वहाँ मेरा जन्म हुआ। कबीर की साखी और बिस्मिल्लाह खान की शहनाइयों से गूँजता बनारस आत्मा में चेतना और उत्सव के बीज बोता गया, जो समय बीतने के साथ पल्लवित होता रहा। माता पिता की पहली संतान हूँ,

बड़े प्यार और जतन से परवरिश हुई, कुछ समय ननिहाल में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ वहाँ साहित्य का माहौल था घर का एक कमरा लाइब्रेरी हुआ करती थी वहीं से साहित्य के प्रति लगाव आरंभ हुआ। साहित्य के सानिध्य में एक संवेदनात्मक दृष्टिकोण का जन्म हुआ और कलम सादा कागजों पर भावनाओं के रंग उकेरने लगी कविता मेरे लिए संवेदनाओं को जिंदा रखने की कवायद है। पेशे से शिक्षिका होने के नाते मुझे बच्चों के बीच रहने का सुख मिला, जो कि मेरे अंदर बचपन को जिंदा रखने में कामयाब रहा। पति और दो बेटों के आत्मिक संबलने मुझे जीवन के किसी भी मोड़ पर टूटने नहीं दिया मित्रों और शुभचिंतकों के उत्साहवर्धन ने काव्यसंग्रह निकालने हेतु प्रेरित किया, उनका मेरे पीछे खड़े होना ही मुझे आत्मविश्वास से भर देता है। 'कतरनें' जैसा कि नाम से ही परिलक्षित है मेरे इर्द-गिर्द घूमती तमाम 'अनकही' को शब्दों का जामा पहना कर परोसा गया काव्य संग्रह है। कतरनों को बुनने के प्रयास में मैं कहाँ तक सफल हो पाई यह आपकी प्रतिक्रियाएँ बताएँगी आपकी प्रतिक्रियाओं के की प्रतीक्षा में।

तनवीर खान

शब्द-शिविका

ओस की गुनगुन से अन्तर्धान होने तक की अनसुनी आवाज और मानव मन की मंजुलधुन से व्यवस्था की विकराल ढक्काध्वनि तक निर्बाध संचरण है संवेदना का। जो जर्रे जर्रे में व्याप्त बेचैनी को सोख लेती है। हम जिसे कविता कहते हैं वह इसी का अविकल रूप है। 'आत्मा के सौंदर्य का शब्द रूप है काव्य'--कहते हैं 'नीरज'। तो 'तनवीर' इसे संवेदनाओं को जिन्दा रखने की कवायद करार देती हैं। पूर्णता की खोज में आत्ममंथन से उपजे शेष प्रश्नों की तड़प।

मौजूदा दौर में हाशिए पर टुकुर टुकुर ताकती कविता की अस्मिता और संघर्ष पथ पर अपने पदांकस्थिर करती हुई तनवीर की वैचारिक उष्मा को भावावेग ने सोखा नही है। एक ताजगी और सजगता है सर्वत्र। 'अशोक वाजपेयी' की दृष्टि में यह 'वांछनीय चौकन्नापन' है।

नव सत्ता विमर्श की क्रूरता को खामोश रहकर देखना संभव नहीं। पर्यावरण को लेकर 'चेतना की धुन' बनाती 'ग्रेटा' का आक्रोश विद्युत गति से कविता में समाया है। 'हम उफ़्फ ना करेंगे' में शब्द-शब्द योद्धा है।

धूप को धूप कहने में जिस ईमानदारी और साहस की दरकार होती है, वह तनवीर में है। उन्होंने धूप, कागज के कैनवस पर जस की तस धर दी है। उसे इतना भी नहीं तराशा कि छांह सी लगने लगे। सेंसर इतना भी नहीं किया कि अनगढ़ता खतरे में पड़ जाए।

दुरूहता और अमूर्तन के धाकड़ प्रतिमान कविता को धुंध के हवाले कर रहे हैं। ऐसे में 'जनवादी स्वरों' का सिंचन करती हुई संग्रह की सारी कविताएं सहज स्वाभाविक रूप से एक नये सूरज से लड़ने को तैयार हैं।

'कतरनें' माँ के प्रति आत्मीय व्यंजना है तो 'संधिपत्र' के जरिए उन्होंने स्त्री विमर्श के दर पर दस्तक दी है। छायावादी संस्कारों ने प्रति पथ से कुछ आध्यात्मिक निष्कर्ष भी सौंपे हैं। पलाश के फूल में सुखद कल की

सुर्खी है। हताशा को काला पानी दे दिया है उन्होंने। प्रतिगामी ताकतों से दो-दो हाथ करने का जुनून लिये तनवीर स्वयं को लिजलिजी भावुकता से कोसों दूर पाती हैं।

एक शानदार सूक्त उनकी काव्य चेतना का परिचय देने को पर्याप्त है---------''मैं सोचती हूं काश मेरे शब्द नगाड़ा होते!'' जो कुंभकर्णी व्यवस्था को जगा पाते। 'चलते रहो अनवरत कि तुम रुक नहीं सकते'--चरैवेति चरैवेति के उद्घोष के साथ कविता अपने होने की गवाही देती है।

मुक्त छंद की वेग वती नदिया सी कविताएं पढ़कर लगता नहीं कि यह तनवीर का प्रथम काव्य संग्रह है। कवयित्री के ही शब्दों में 'मस्तिष्क के न्यूरॉन को बेचैन करने वाला कोई यंत्र' बन गये हैं शब्द, असीमित संभावनाओं के अभिनव क्षितिज खोलते हुए।

समकालीन कविता विश्व में इस समर्थ हस्ताक्षर का स्वागत ही होगा इसी शुभकामना के साथ----

इन्दिरा किसलय (लेखिका/कवयित्री)
८ नवंबर २०१९/नागपुर-२७
मो-९३७१०२३६२५

समीक्षा

प्रिय तनवीर खान जी की कविताएं कल्पना से परे वर्तमान की परिस्थितियों से परिचय करवाती हैं तो कभी उन पर प्रहार करती हुईं तो कभी जाग्रत करवाती हुई प्रतीत होती हैं। एक कवयित्री के रूप में उनके भीतर के भावों को स्पष्टता से समझा जा सकता है जैसे कि काश उनके शब्द नगाड़ा होते कविता का सीधा अर्थ भावना से जुड़ा हुआ है और जब भावों में चुने हुए शब्दों के माध्यम से कविता में इतनी ताकत भर दी जाए कि वह सामाजिक विकृतियों को नष्ट कर सके जिसमें तनवीर जी से यही आशा की जा सकती है कि वे एक कवयित्री के रूप में भविष्य में सफल होते हुए दिखेंगी।

कतरनें उनकी तमाम बेहतरीन रचनाओं में से एक है जो यादों के गांव में मंदमंद मुस्कान के साथ हृदय को प्रसन्न करती हुई तो कभी भावुकता के मौसम में शूल भेदती हुई हवाएं तो कभी प्रिय चित्रहार के दर्शन करवाती हुई रचना कही जाए तो ये अतिशयोक्ति नहीं होगी।

उनकी रचनाएं पाठकों को बांधती हैं व विचार करने के लिए मन-मस्तिष्क को झकझोरने में सफल होती हैं। उनकी हर एक रचना में एक गंभीर संदेश है, निश्चित ही वे अपनी लेखनी के माध्यम से सफल हैं तथा उनके उज्जवल भविष्य की कामना करती हूं।

साहित्यकार/कवयीत्री
डॉ. वसुंधरा राय
नागपुर-महाराष्ट्र
संपर्क-९६२३६९२२५५
vassundhararai@gmail-com

अनुक्रमणिका

1.	कतरनें (१)	9
2.	कतरनें (२)	10
3.	कतरनें (३)	11
4.	खोखली परिभाषा	12
5.	पलाश के फूल	13
6.	संधि पत्र	14
7.	कब तक बौनापन जिएगा	15
8.	पथिक	16
9.	तलाश जिन्दगी की	17
10.	मैं सोचती हूँ काश!	18
11.	सृजन	19
12.	कस्तूरी	20
13.	क्योंकि	21
14.	तुम रुक नहीं सकते	22
15.	ओ सुषमा	23
16.	चेतना की धुन	24
17.	हम उफ ना करेंगे	25

18.	अधूरी कविता	26
19.	अंकुर बरगद होता	27
20.	किसी ने पूछा मुझसे	28
21.	तुम्हारी शामें चुराकर	29
22.	शेष प्रश्न	30
23.	बहो मुझसा	31-32

कतरनें

वो रंगीन सी
टुकड़ों को जोड़कर बनाई गई
चादर
संदूक के एक कोने में दबी
ज्यों ही हाथों के स्पर्श में आई
अनायास ही हृदय से
संवाद साध बैठी
और हाथ पकड़कर ले गई
स्मृति के गलियारों में
मानो चादर ना हो
मस्तिष्क के न्यूरान को
बेचैन कर देने वाला
कोई यंत्र हो
चादर का सुरमई कोना
अम्मा (नानी) के स्नेहसिक्त
आलिंगन
की याद दिला गया
वो आलिंगन जिसमें प्यार की
गर्माहट और सुरक्षा का कठोर
आवरण छिपा था।
उनके खुर दुरे हाथों का स्पर्श
औषधीय चमत्कार को भी
मात दे देता था,
छत पर सोते हुए
उनका वो अलिफ लैला,
गुल बकावली की कहानियां सुनाना
टिमटिमाते तारों के साथ चांद से
रिश्तों का जुड़ना
ना जाने कब भावनाओं की
जमीन को नम करता गया
पता ही ना चला
हवा के झोंके के साथ आई रोटी
की
सोंधी महक, उनके हाथों के
जादू की याद दिला गई
और मेरी तंद्रा भंग कर गई
एक टीस सी उठी
आंखो के किनारे से दर्द
हौले हौले पिघलने लगा
नजरें आसमान में टिक गईं
कि शायद .....।

कतरनें २

चादर के बीचो-बीच लगा
वह गुलाबी टुकड़ा
मां की कमजोर देह
मगर मजबूत शख्सियत की
याद दिला गया
याद है मुझे
मेरी विदा का वो क्षण
जब कतरा कतरा कर जोड़ें गए
हौसलों का महल
भरभरा कर धराशाई हो गया
आंसुओं का नमक
तुम्हारे चेहरे को नमकीन कर गया
तुम्हारी कातर आंखों में तैरते
अनगिनत सवाल और शंकाएं
मुझसे छिपी नहीं थी
तुम जानती थी
मैं जिस जीवन में प्रवेश करने जा रही हूं
उसकी राह आसान नहीं है
लेकिन तुमने आंचल में
गुड़ चावल के साथ
चुपके से बांध दिया था
संस्कार, नेह, विश्वास, दृढ़ता, जुझारूपन।
सच मानो मां
आज भी वो खजाना
खाली नहीं हुआ है
बांटती रहीं हूं खुले दिल से
तुम्हारी सौगातों को
बदले में मिली सौगातें
उसे ख़ाली नहीं होने देती मां
कैसे कहूं शुक्रिया तुम्हे
मुझे 'मैं' बनाने के लिए।

कतरनें ३

गुलाबी रंग से सटा
आसमानी रंग का वो टुकड़ा
महज पिता के शर्ट की कतरन
नहीं
बल्कि पूरा आसमान था
तटस्थ से दिखने वाले
मेरे पिता के लिए
बेटियां बोझ नहीं थी
संस्कारों की बेड़ियों ने
कभी सीने से लगने की
इजाजत तो नहीं दी
लेकिन उनका दिल
बेटियों की मुस्कान पर
धड़कता रहा
हमारे उदास चेहरे
उनके चेहरे की शिकन बन जाते
हमारी उलझनें
उन्हें बेचैन कर देती
आंखों में तैरते प्रश्न के साथ-साथ
सब कुछ ठीक हो जाने का
आभाषित आश्वासन
हम बांच लेते थे
उनका होना नीम की छांव
सा लगता है
उनका होना
सुरक्षा की अभेद दीवार सा लगता
है
उनका होना
आसमान सा लगता है।

खोखली परिभाषा

न जाने क्यों दिल चाहा
कि देखूँ,
स्मृति पट खोल के
पीछे कितना कुछ छूटता चला गया
चुलबुला बचपन,
मां का ममता भरा आंचल
नैतिक मूल्यों की सीख
परिपक्व यौवन,
अचानक शोर ने भंग कर दिया
ध्यान,
बारह साल के बच्चे की लाश पर,
मातम करता बूढ़ा बाप
गाड़ी वाले के सामने
हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाया,
एक ही बेटा था साहब.....
सब कुछ उजड़ गया ....
गाड़ी वाले साहब ने
नोटों की कुछ गड्डियाँ
बूढ़े के हाथों पर धरे और चल
दिये,
पैसों की चमक
बूढ़े के हाथों में उतर आई
साहूकार का उधार,
घर की टपकती छत,
बीबी की बीमारी
बिटिया की शादी के आँकड़े जोड़ते
बूढ़े के कदम, अचानक जवान हो
गए,
गम बिक गया, परिस्थितियों के
हाथों
ममता, संवेदना, नैतिकता, मूल्य,
कर्तव्य, निरीह से,
बेमानीसे, अर्थहीनसे
अभी भी गूँज रहे हैं
हवाओं में।

पलाश के फूल

अखबार की सुर्खियों की कालिमा
धीरे धीरे दिल में गहराने लगी,
कश्मीर की वादियों में छाया
सन्नाटा
जोर जोर से चीखने लगा,
एक बार फिर परोसा गया है
चुनावी वादों का छप्पन भोग,
सब्जबाग दिखाए गए हैं
खौफ में जीती आँखों को,
अलगाववादी राजनीति कर बने
उदारवादी सत्ता के सौदागर
कोने में दुबका गांधीवाद,
सिसक रही संस्कृति देश की,
भागना चाहती हूँ इस सच से
देखना चाहती हूँ एक ऐसा कल,
जहाँ सर्द हवाओं में मुस्कुराते
चिनार हों,
हाँ! सुनहरा कल दस्तक दे रहा है,
मैं सुन सकती हूँ उसकी आवाज,
उम्मीद भरे हाथों ने, ज्यों ही द्वार
खोला ....
ठंडी हवा का एक झोंका
पलाश के फूलों को बिखर ागया
और पलाश की लाली
आत्मा तक फैलती चली गई।

संधिपत्र

हाँ! शायद तुमने संधिपत्र पर
उसी दिन कर दिए थे
हस्ताक्षर,
जिस दिन संसार में कदम रखा था,
भैया की झूठी थाली उठाने के बाद
अपनी थाली लगाना,
पता नहीं तुम्हारी इच्छा थी
या वो संधिपत्र?
अपने पंखों की उड़ान को, दायरों में बाँधना
तुम्हारी इच्छा थी, या वो संधिपत्र?
अनुराग की वीथियों में
किल्लोल करते हृदय को
मर्यादा की ओट में
छिपा लेना,
पता नहीं तुम्हारी इच्छा थी,
या वो संधिपत्र?
जीवन पथ के मंथन में
हर बार विष तुम्हारे हिस्से आया
पता नहीं ये तुम्हारी इच्छा थी, या वो संधिपत्र?

कब तक बौना पन जियेगा

जिन मुस्कानों में
कभी हुआ करती थी,
अबोध सी कैफियत,
उन पर घिर आया है
एक अजनबी सा बुढ़ापा,
जिन कंधो पर कभी आसमान,
टिका करते थे,
उन कंधो ने खो दिया अपना
वजूद,
अब रह गए हैं केवल ठूँठ,
सड़को से, मोहब्बत करने लगे हैं
लोग,
कोई अकेले नहीं चलता,
चलता तो बस समूह है,
कैक्टस में फूल तो आने लगे हैं,
बस आम की मिठास,
नकली हो गई है,
आखिर कब तक,
घुटन का धुआँ लीलते लीलते
ये बौना पन जियेगा,
कोरे आदर्श पसरते रहेंगे,
अब स्वर तो उभरने लगे हैं,
पर समवेत नहीं है,
स्वर समवेत हो जाये,
तो अमल का ढंग बदल जायेगा,
रूढ़ियों में जकड़ा सूरज,
लगता है अब ना जाने कब
दिशा बदलकर निकल आएगा।।

पथिक

लौट रहे हैं पंछी घरौंदों की ओर
अधीर है पथिक,
नीड़ तक पहुँचने को,
सूरज भी विदा ले रहा है,
बादलों की ओट से,
सबके चेहरे खुश हैं,
पर वो उदास है,
पक्षियों का कलर व
बेसुरा सा लग रहा,
शोर सी लग रही,
पत्तों की सरसराहट,
न जाने किन वीथियों में
भटक रहा होगा,
उसका पथिक,
चिड़ियों की चहचहाहट,
ने भंग कर दी तंद्रा
साँझ की झुरमुट में उभरती
मनमोहिनी आकृति
धीरे धीरे साफ होने लगी,
अचानक पक्षियों का शोर,
संगीतमय हो गया
पत्तों की सरसराहट
बाँसुरी की धुन सी लगी,
विदा होता सूर्य
अपना सिंदूरी रंग
उसके चेहरे पर मलता गया।

तलाश जिन्दगी की

जिंदगी को जब भी मैंने
तलाशना चाहा,
तो देखा उसे सड़कों पर,
खेतों में, यतीमखानों में, अस्पतालों में,
और हाँ महलों में और विदेशी कारों में,
कुछ यहाँ कुछ वहाँ
सर्वत्र बिखरी पड़ी थी, तमाम जिन्दगियाँ
मैंने चाहा उसे समेटना
पर रही असफल,
कुछेक ने मुझसे पूछा,
कोई मुझे बताए
आखिर जिंदगी रहती है कहाँ?
क्या है उसका पता ठिकाना
हर एक ने यही कहा
जिंदगी का तो पता नहीं
हाँ मैं अभी तक जिंदा हूँ
अब तो बस यही जिंदगी लगती है,
कि जिंदगी-जिंदगी को तरसती है,
मेरी तलाश अब तलक अधूरी है,
न जाने मेरे और जिंदगी के बीच
अभी और कितनी दूरी है।

मैं सोचती हूँ काश

मैं नहीं सोचती कि
मेरे लिखे को कविता का नाम दो
मैं नहीं सोचूँगी कि
कवियों में मेरा नाम हो,
मेरे शब्द भले ही
महफिल की रौनक ना बने,
लेकिन मैं सोचती हूँ,
कि मेरे शब्दों की जमीन से उगे
एक ईमानदार सोच,
जो पहाड़ों का सीना चीरकर
हवाओं का रुख बदल दे,
मेरे शब्द निराशा के बादलों को
उम्मीद की बारिशों में बदल दें,
मैं सोचती हूँ
मेरा कोई वाक्य
किसी की सोई हुई आत्मा को फिर से जगा दे,
मैं सोचती हूँ
मेरे शब्दों में बस जाए
बाण की तासीर,
जो ढुल मुल व्यवस्था को
चीरकर निकल जाए
मैं सोचती हूँ,
नगाड़ों की तरह गूंज उठे मेरे शब्द,
ताकि अव्यवस्था की खुमारी में
सोई सियासत,
नींद से जाग जाए
मैं सोचती हूँ
काश
मेरे शब्द नगाड़ा होते।

सृजन

मेरा मस्तिष्क
जब कभी संवेदनाओं
से लबालब
बेचैन सा हो उठता है,
विचारों का सैलाब
सीमायें तोड़ने पर,
उतारू हो जाता है,
मैं समझ जाती हूँ,
मेरे भीतर कोई
कविता आकार ले रही है,
मेरा हृदय
लय बद्ध हो,
अँजुरियों से,
शब्द सुमन
बिखेरने लगता है,
और नवजात कविता का
जन्म होता है।

कस्तूरी

अनगिनत सपनों का बोझ ढोती
आँखों से हौले से फिसला
एक स्वप्न
आज यथार्थ बन
अपनी मृगतृष्णा को
सदा के लिए तृप्त कर गया
तपती रेत और मरीचिकाओं पर
जन्मा
भावनाओं का बीज
मुझे दे ही गया वो
ख्वाबों की मंजिल
आखिर ख़त्म हुई तलाश
उस बूँद की
जो न जाने किस
सीप की कोख में
आकार ले रही थी
जीत की इस,
मादक कस्तूरी का नशा
विराम दे गया
सारे कष्टों को
आत्मसात करना चाहती हूँ
अपने अंतस में
इस कस्तूरी की मदमाती सुगंध को
जो वर्षभर महकाती रहेगी
अपनी भीनी-भीनी सुगंध से।

क्योंकि

तुम मुझे अच्छे लगते हो,
इसलिए नहीं, कि
तुम्हारी मुस्कान में है,
सितारों के झिलमिलाने का एहसास,
कि तुम्हारी आँखो में है
आशाओं की गुनगुनी धूप,
कि तुम्हारी चाल में है,
यौवन की उन्मुक्तता।
बल्कि इसलिए
कि तुम्हारे हृदय में टिमटिमाता है,
विश्वास का दीपक,
कि तुम्हारे बाजुओं में है,
हमारी सुरक्षा का घेरा,
कि तुम्हारे चेहरे पर है
सादगी का आभा मंडल,
कि साहस है तुममें,
सच को सच कहने का,
सड़ी गली परंपराओं को तोड़ने का,
सपनों को यथार्थ बनाने का,
विसंगतियों और विद्रूपताओं पर
प्रश्न खड़े करने का।

तुम रुक नहीं सकते

क्या हुआ जो एक दिया
फिर भी टिमटिमाता है
अपने क्षीण प्रकाश का पंख
फैलाकर,
भले ही हवाओं के थपेड़े
उसकी लौ को लील लेते हैं,
लेकिन नहीं छोड़ता वो
रोशनी का धर्म
क्या हुआ जो रेत पर बने
कदमों के निशान
लहरों की आगोश में समा जाते हैं,
क्या हुआ जो तुम्हारे बढ़ाए गए
कदम
परंपराओं की बेड़ियों में
उलझ जाते हैं,
खोल दो हर गिरह
और बना लो नई राहें
चल पड़ो नितांत अकेले
तो क्या हुआ
जो तुम्हारे साथ
लोगों का हुजूम नहीं
भीड़ की कोई मंजिल नहीं होती
तुम चलते रहो
अपनी उन्मुक्त चेतना के साथ
चेतना से बढ़कर
कोई सहचर नहीं
चलते रहो अनवरत
कि तुम रुक नहीं सकते।

ओ सुषमा

ओ सुषमा
सुर्ख गुलहड़ को देखो
इठलाते हुए
मुस्काते हुए
शाम होने तक
मुरझा जाते हैं
सूरज की क्रूर किरणें
सोख लेती हैं
उसकी ताजगी
उसके नाजुक किनारे
सहमकर सिकुड़ने लगते हैं
लेकिन काली रातों में
खिला चाँद
कर देता है
ओस की बूँदों से
उसकी मरहम पट्टी
और गुलहड़ फिर से
जी उठता है
सूरज से लड़ने की तैयारी में

तुम वही सुर्ख गुलहड़ हो
जो हार नहीं मानती
जीवन की गुत्थियों को
अपनी हँसी से सुलझाने वाली
तुम भला कब डरने लगी
कर्क की गाँठ से
तुम्हारी जिजीविषा
तुम्हारी जिद
तुम्हारे हौसलों
के आगे
किसी गाँठ की क्या मजाल
हार गई गाँठ
और तुम जीत गई
उसी सुर्ख गुड़हल की तरह
जो अँधेरी रातों में
अपने वजूद की टूटन को
समेट रहा होता है
एक नए सूरज से
लड़ने के लिए।

चेतना की धुन

ग्रेटा तुम्हारा स्वर क्षीण
जरूर था
मगर उसमें तीव्रता थी
दामिनी सी
थी बादलों के गरजने की तासीर,
पाषाण को चीरकर
निकलने वाला
तुम्हारा अकाट्य सत्य का स्वर,
दुनिया के चाहने से भी
दबाया ना जा सकेगा,
तुम निरंतर बढ़ती रहो,
अपनी चेतना की धुन पर ,
कि प्रकृति की आस का
अन्तिम विकल्प हो तुम।

हम उफ्फ ना करेंगे

तुम ईंट पर ईंट जोड़ते चलो
हम उफ ना करेंगें
लेकिन इमारतों में,
थोड़ी सी दरार जरूर रखना,
ताकि गरीब की झोपड़ी से निकली,
आह का स्वर,
तुम्हारे महलों से टकराकर
लौट ना जाये,
तुम खूब फूलों फलो,
लेकिन इतना भी नहीं
कि किसी का पसीना झुककर
ना पोछ सको
तुम्हारे लोभ का,
अंधा कुआँ भरे

हमें गुरेज नहीं
लेकिन इतना भी नहीं
की पाव भर राशन के लिए,
संघर्ष करते लोगों की
बारी आने तक,
जीवन शेष ही ना बचे,
तुम्हारा यश चोटी तक पहुँचे
हमें शिकवा नहीं
लेकिन ऐसे नहीं,
कि हमें धर्म, भाषा,
जाति के नाम पर लड़ा दो,
और देश की,
अस्मिता भी ना बचा पाओं।

अधूरी कविता

होंठो पे मुस्कान सजा,
वख्त की क्रूरता को,
मेकअप में छिपा,
अनवरत निकल पड़ी,
तुम जीवन के,
उबड़ खाबड़ रास्तों पर,
अपनी चाल को समतल बनाती
हुई,
लेकिन तुम्हारे चाहने से भी
क्या समतल हुई राहें,
हर बार तुम्हारा दूसरा कदम,
वहाँ पड़ ही जाता,
जहाँ कटीले कैक्टस
तुम्हारे इंतजार में,
काँटो का दंश लिए,
तैयार बैठे होते,
जतन से रोकी गई,
वेदना का जखीरा
रिसने लगता,
जिसमें बह जाता मेकअप का
आवरण,
समय के दंश चिन्हों का दस्तावेज,
चीखने लगता,
तब मौन की चीख,
बेसुरे स्वर में गाने लगती,
एक अधूरी सी कविता,
गायन अब भी जारी है,
ढूँढ़ रहा है 'वो' शब्द,
जो उसकी अधूरी कविता,
को पूर्ण कर सके,
ढूँढ़ रहा है वो लय,
जो उसके बेसुरे स्वर को
सुरीला कर सके।

अंकुर बरगद होता

देखती हूँ,
मेरे घर के सामने लगा,
बरगद बूढ़ा होने लगा है,
मेरा मन काँप उठता है,
एक अनजानी आशंका से,
बरगद का ना होना,
हमें छाँव से महरूम तो ना कर देगा,
अब कहाँ रह गए हैं बरगद,
गिने-चुने बूढ़े बरगद,
कब तक रोक सकेंगे,
सूरज की तपिश को,
ढूँढने लगती हूँ,
यदा-कदा उगे अंकुर को,
कैसे बरगद ने,
गोद में संभाल रखा है,
बरगद की बाहों में लगा हिंडोला,
बच्चों को ऊँची पेंगें दे रहा है,
उनकी आँखो में तैरती
मासूमियत और निश्छल हँसी
का रसपान कर रहा है,
हाँ! मुझे मिल गया,
बरगद का विकल्प,
ये नन्हे अंकुर किसी छोटे बरगद से कम तो नहीं,
भले ही इतने घने नहीं,
लेकिन जब पूरी धरती अंकुरों से भर जाएगी तब कोई छाया को,
मोहताज ना होगा,
हाँ! ये अंकुर बरगद जरूर बनेंगे।

किसी ने पूछा मुझसे

किसी ने पूछा मुझसे,
क्या तुम्हारी संवेदनाओं के तार,
दर्द से ही जुड़े हैं?
तुम्हारी लेखनी उन्मुक्तता
हँसी, उल्लास को,
उकेरने में सकुचाती क्यों है?
मैं कहती हूँ,
जो उन्मुक्त है,
वह स्वयं जाहिर है,
हँसी और उल्लास की तो दुनिया
सहचर है,
इसलिए मेरे ना लिखने
पर भी वो उपेक्षित ना होंगे,
लेकिन दर्द अकेला है,
वो तलाशता है,
अंतस का अंधेरा कोना,
मैं अपनी संवेदनाओं के सहारे,
वेदना की उनवीथियों में,
भटकते हुए,
खोजती हूँ, पीड़ा के द्वार,
और धर लाती हूँ,
लेखनी में पीड़ा की स्याही,
और बिखेर देती हूँ,
कोरे कागजों पर,
क्योंकि तब वो,
दर्द किसी एक का ना होकर,
बँट जाता है कतरों कतरों में,
जर्रों जर्रों में।

तुम्हारी शामें चुराकर

चाय की प्याली,

अखबार की खबरें,

मोबाइल के वृहद संसार के बीच,

अकेले बैठे तुम,

चाय की चाय की चुस्कियों की आवाज के,

नितांत अकेले श्रोता,

तुम्हारी आस,

कनखियों से मुझे तलाशती

लेकिन सृजन के गलियारे में,

चहल कदमी करता देख

उल्टे पाँव लौट जाती

यकीन मानो

तुम्हारी शामें चुराकर ही,

रच सकी हूँ,

सृजन का छोटा सा संसार

मेरी हर कविता,

तुम्हारी बहुत सी,

बे रंग शामों की

कर्जदार है।

शेषप्रश्न

जब भी कभी देखती हूँ
प्लेटफार्म के किनारों पर,
नितांत नग्न जिंदगियाँ
उजड़े नीड़ की दरारों से,
झाँकता बचपन
अभावों की जद में
उजड़ा यौवन,
कातर बूढ़ी आँखों के
अनबहे आँसू,
सिसकता अतीत और रिसता वर्तमान,
फिर भी आँखों में जीने की भूख,
मौत को पराजित करने की प्रतिस्पर्धा,
उफ्फ! चेतना शून्य हो जाती है,
तब मौन स्वयं मुखरित हो उठता है,
जो झकझोर कर पटक देता है,
वर्तमान के कठोर धरातल पर,
मेरा यायावर मन निकल पड़ता है,
फिर से एक नई तलाश में,
प्रश्न फिर भी शेष है।

बहो मुझ सा

सरल प्रवाह से, बहती सरिता को देख,

उठा मन में ये प्रश्न,

यूँ ही बहना हो तो कोई भी बहले,

प्रश्न सुन मुस्कुराई सरिता,

बोली.....

कंट काकीर्ण पथों को,

पार करने के प्रयास में,

कितने ही घाव खाये हैं मैंने,

सदियों से मानवी छलावे का

शिकार बनी हूँ मैं,

तुम्हारा मैल गलीज, बनाता रहा है मुझे,

मेरा अंतर्मन घायल है,

शवों की सडांध से,

मेरा अस्तित्व घावों की जद में है,

मेरा रुदन तुम्हारी पहुँच से दूर है,

क्योंकि.....

आज भी बहती हूँ मैं

सरल प्रवाह सी,

कवि की कविता सी,

अबोध चंचल मन सी,
बह सकते हो? तो बहो मुझ सा,
कर सकते हो तो करो,
विष पान नीलकंठ सा,
विराधाभासों में,
स्थिर रह सकते हो तो,
तो बहो मुझ सा।

व्यक्तित्व दर्पण

नाम - तनवीर मतीन खान

जन्म - ७ मई

शिक्षा - एम.ए. (राजनीति), बी.एड., एम.ए. (हिंदी अध्ययनरत)

निवास - 132/202 स्वराज अपार्टमेंट्स, स्वराज नगर, मानेवाड़ा रिंग रोड,नागपुर (महराष्ट्र) ।

मोबाईल - ९०२१४५८०५१, ७२१९४०१७४८ (व्हाट्सएप्प)

मेल - tanveer-sultana73@gmail-com

सम्प्रति - हिंदी विभागाध्यक्ष (नायर्स एसेन्स इंटरनेशनल स्कूल, नागपुर)

रुचि - कविता लेखन, नाटक लेखन एवं निर्देशन, पथ नाट्य लेखन एवं निर्देशन, लघुकथा लेखन, मंच संचालन एवं साहित्य पठन पाठन।

यदि आप अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते हैं तो निवेदन है कि 'हिन्दी में हस्ताक्षर करें', आपकी यह छोटी-सी कोशिश हिन्दी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बनाने में अमूल्य योगदान देगी ।

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी, जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९, अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com
978-93-5372-074-2
मूल्य 60/-
शब्द सुगंध